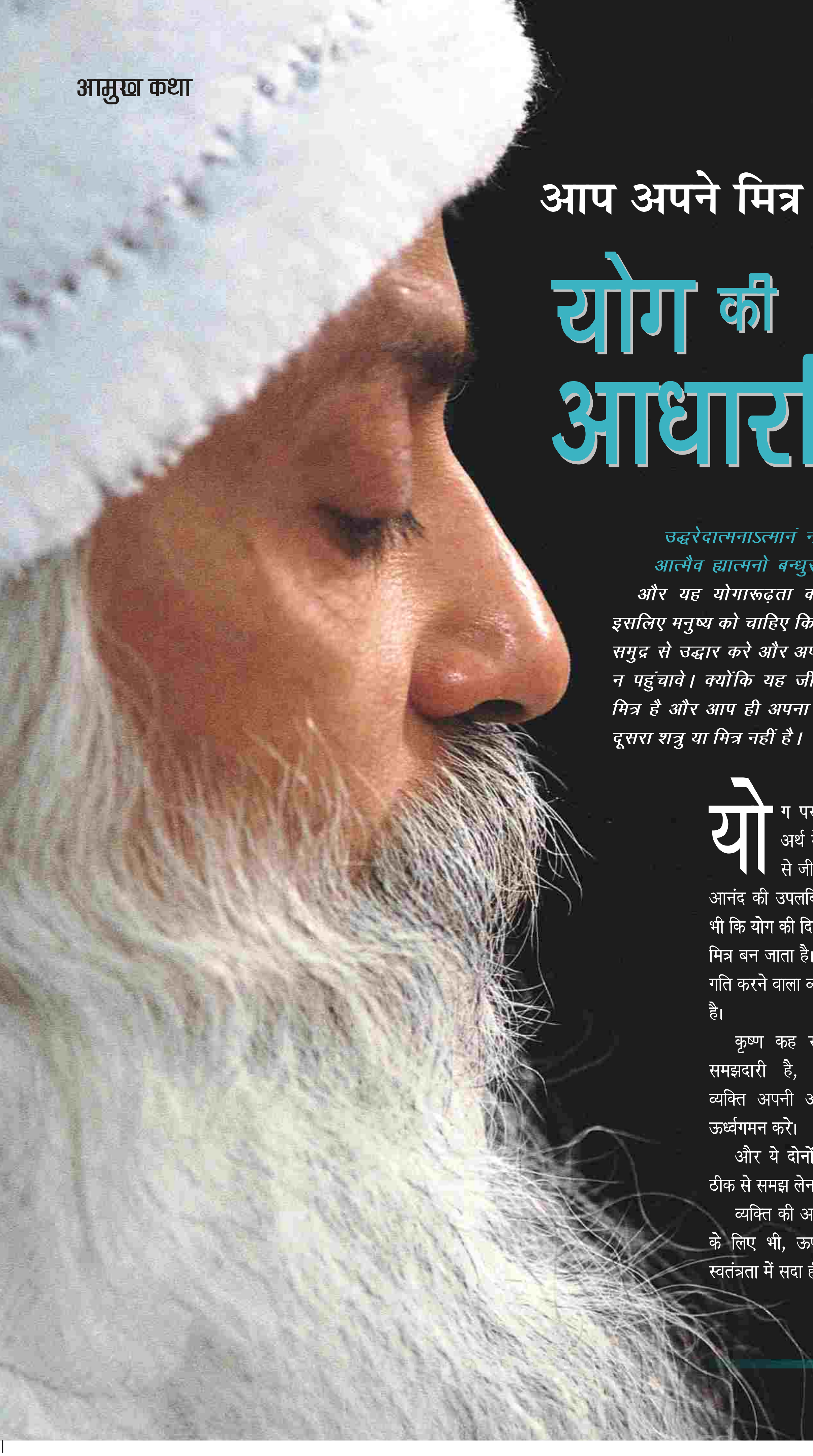

आप अपने मित्र हैं या शत्रु?

योग की आधारशिला

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।

और यह योगारूढ़ता कल्याण में हेतु कहीं है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने द्वारा आपका संसार समुद्र से उद्धार करे और अपने आत्मा को अधोगति में न पहुंचावे। क्योंकि यह जीवात्मा आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है अर्थात और कोई दूसरा शत्रु या मित्र नहीं है।

योग परम मंगल है। परम मंगल इस अर्थ में कि केवल योग के ही माध्यम से जीवन के सत्य की और जीवन के आनंद की उपलब्धि है। परम मंगल इस अर्थ में भी कि योग की दिशा में गति करता व्यक्ति अपना मित्र बन जाता है। और योग के विपरीत दिशा में गति करने वाला व्यक्ति अपना ही शत्रु सिद्ध होता है।

कृष्ण कह रहे हैं अर्जुन से, उचित है, समझदारी है, बुद्धिमत्ता है इसी में कि व्यक्ति अपनी आत्मा का अधोगमन न करे, ऊर्ध्वगमन करे।

और ये दोनों बातें संभव हैं। इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है।

व्यक्ति की आत्मा स्वतंत्र है नीचे यात्रा करने के लिए भी, ऊपर यात्रा करने के लिए भी। स्वतंत्रता में सदा ही खतरा भी है। स्वतंत्रता का

व्यक्ति की आत्मा स्वतंत्र है नीचे यात्रा करने के लिए भी, ऊपर यात्रा करने के लिए भी। स्वतंत्रता में सदा ही खतरा भी है। स्वतंत्रता का अर्थ ही होता है, अपने अहित की भी स्वतंत्रता। अगर कोई आपसे कहे कि आप सिर्फ वही करने में स्वतंत्र हैं, जो आपके हित में है; वह कहने में आप स्वतंत्र नहीं हैं, जो आपके हित में नहीं है

अर्थ ही होता है, अपने अहित की भी स्वतंत्रता। अगर कोई आपसे कहे कि आप सिर्फ वही करने में स्वतंत्र हैं, जो आपके हित में है; वह कहने में आप स्वतंत्र नहीं हैं, जो आपके हित में नहीं है—तो आपकी स्वतंत्रता का कोई भी अर्थ नहीं होगा। कोई अगर मुझसे कहे कि मैं स्वतंत्र हूं सिर्फ धर्म करने में और अधर्म करने के लिए स्वतंत्र नहीं हूं, तो उस स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं होगा; वह परतंत्रता का ही एक रूप है।

मनुष्य की आत्मा स्वतंत्र है। और जब भी हम कहते हैं, कोई स्वतंत्र है, तो दोनों दिशाओं की स्वतंत्रता उपलब्ध हो जाती है—बुरा करने की भी, भला करने की भी। दूसरे के साथ बुरा करने की स्वतंत्रता, अपने साथ बुरा करने की स्वतंत्रता बन जाती है। और दूसरे के साथ भला करने की स्वतंत्रता, अपने साथ भला करने की स्वतंत्रता बन जाती है।

मनुष्य चाहे तो अंतिम नर्क के दुख तक यात्रा कर सकता है; और चाहे—वही मनुष्य, ठीक वही मनुष्य, जो अंतिम नर्क को छूने में समर्थ है—चाहे तो मोक्ष के अंतिम सोपान तक भी यात्रा कर सकता है।

ये दोनों दिशाएं खुली हैं। और इसीलिए मनुष्य अपना मित्र भी हो सकता है और अपना शत्रु भी। हममें से बहुत कम लोग हैं जो अपने मित्र होते हैं, अधिक तो अपने शत्रु ही सिद्ध होते हैं। क्योंकि हम जो भी करते हैं, उससे अपना ही आत्मघात होता है, और कुछ भी नहीं।

किसे हम कहें कि अपना मित्र है? और किसे हम कहें कि अपना शत्रु है?

एक छोटी-सी परिभाषा निर्मित की जा सकती है। हम ऐसा कुछ भी करते हों, जिससे दुख फलित होता है, तो हम अपने मित्र नहीं कहे जा सकते। स्वयं के लिए दुख के बीज बोने वाला व्यक्ति अपना शत्रु है। और हम सब स्वयं के लिए दुख के बीज बोते हैं।

निश्चित ही, बीज बोने में और फसल काटने में बहुत वक्त लग जाता है। इसलिए हमें याद भी नहीं रहता कि हम अपने ही बीजों के साथ की गई मेहनत की फसल काट रहे हैं। अक्सर फासला इतना हो जाता है कि हम सोचते हैं, बीज तो हमने बोए थे अमृत के, न मालूम कैसा दुर्भाग्य कि फल जहर के और विष के उपलब्ध हुए हैं!

लेकिन इस जगत में जो हम बोते हैं, उसके अतिरिक्त हमें कुछ भी न मिलता है, न मिलने का कोई उपाय है।

हम वही पाते हैं, जो हम अपने को निर्मित करते हैं। हम वही पाते हैं, जिसकी हम तैयारी करते हैं। हम वहीं पहुंचते हैं, जहां की हम यात्रा करते हैं। हम वहां नहीं पहुंच सकते, जहां की हमने यात्रा ही न की हो। यद्यपि हो सकता है, यात्रा करते समय हमने अपने मन में कल्पना की मंजिल कोई और बनाई हो। रास्तों को इससे कोई प्रयोजन नहीं है।

मैं नदी की तरफ जा रहा हूं। मन में सोचता हूं कि नदी की तरफ जा रहा हूं। लेकिन अगर बाजार की तरफ चलने वाले रास्ते पर चलूंगा, तो मैं कितना ही सोचूं कि मैं नदी की तरफ जा रहा हूं, मैं पहुंचूंगा बाजार। सोचने से नहीं पहुंचता है आदमी; किन रास्तों पर चलता है, उनसे पहुंचता है। मंजिलें मन में तय नहीं होतीं, रास्तों से तय होती हैं।

आप कोई भी सपना देखते रहें। अगर आपने बीज नीम के बो दिए हैं, तो सपने आप शायद ले रहे हों कि कोई स्वादिष्ट मधुर फल लगेंगे। आपके सपनों से फल नहीं निकलते। फल आपके बोए गए बीजों से निकलते हैं। इसलिए आखिर में जब नीम के कड़वे फल हाथ में आते हैं, तो शायद आप दुखी होते हैं और पछताते हैं। सोचते हैं, मैंने तो बीज बोए थे अमृत के, फल कड़वे कैसे आए?

ध्यान रहे, फल ही कसौटी है, परीक्षा है बीज की। फल ही बताता है कि बीज आपने कैसे बोए थे। आपने कल्पना क्या की थी, उससे बीजों को कोई प्रयोजन नहीं है।

हम सभी आनंद लाना चाहते हैं जीवन में, लेकिन आता कहां है आनंद! हम सभी शांति चाहते हैं जीवन में, लेकिन मिलती कहां है शांति! हम सभी चाहते हैं कि सुख, महासुख बरसे, पर बरसता कभी नहीं है।

तो इस संबंध में एक बात इस सूत्र से समझ लेनी जरूरी है कि हमारी चाह से नहीं आते फल; हम जो बोते हैं, उससे आते हैं।

हम चाहते कुछ हैं, बोते कुछ हैं। हम बोते जहर हैं और चाहते अमृत हैं! फिर जब फल आते हैं, तो जहर के ही आते हैं, दुख और पीड़ा के ही आते हैं, नर्क ही फलित होता है।

हम सब अपने जीवन को देखें, तो खयाल में आ सकता है। जीवनभर चलकर हम सिवाय दुख के गड्ढों के और कहीं भी नहीं पहुंचते मालूम पड़ते हैं। रोज दुख घना होता चला जाता है। रोज रात कटती नहीं, और बड़ी होती चली जाती है। रोज मन पर और संताप के कांटे फैलते चले जाते हैं। फूल आनंद के कहीं खिलते हुए मालुम नहीं पड़ते। पैरों मे पत्थर बंध जाते हैं दुख के। पैर नृत्य नहीं कर पाते हैं उस खुशी में, जिस खुशी की हम तलाश में हैं। फिर कहीं न कहीं हम—हम ही—क्योंकि और कोई नहीं है; हम ही कुछ गलत बो लेते हैं। उस गलत बोने में ही हम अपने शत्रु सिद्ध होते हैं। बीज बोते वक्त खयाल रखना, क्या बो रहे हैं।